International Journal of Trend in Scientific Research and Development (IJTSRD)
Volume 5 Issue 5, July-August 2021 Available Online: www.ijtsrd.com e-ISSN: 2456 – 6470

हिंदी-कविता और पर्यावरण-चेतना के विविध परिदृश्य

Dr. Sadhana Agarwal

Assistant Professor, Hindi Department, D.B.S. College, Govind Nagar, Kanpur, Uttar Pradesh, India

सार

भारत वर्ष का प्राकृतिक वातावरण और सौंदर्य अपने आप में बेजोड़ है। प्रकृति सौंदर्य की जो विविधता भारत में मिलती है, वैसी विश्व के अन्य देशों में नहीं देखी जाती। भारत की विलक्षणता और उसकी भारतीयता इसकी प्राकृतिक विविधता में ही है। इसलिए प्राचीन ऋषि-महर्षि प्रकृति के साथ मानव को एक- दूसरे से जोड़कर रखने का प्रयास किये थे। उन्होंने मानवों के सहज, सात्विक और अपने परिसर की प्रकृति और जीवों के साथ ममैक्य जीवन का विधान किया। तेलुगु भाषा में प्राचीन काल से कवियों ने प्रकृति की गोद में बैठकर अनेक काव्य रचनाएँ की हैं। प्रकृति के साथ तेलुगु प्रजा ममेक हो गई है। उसने प्रकृति में तत्व ज्ञान के दर्शन कर अपने जीवन का विधान किया। प्रकृति की गोद में खेला, पला और बड़ा हुआ। प्रकृति और पुरुष को अपने आराध्य बनाये।प्रकृति के परिरक्षण के साथ अपने जीवन को भी संरक्षित करता आया। प्रकृति वह हो गई और वह प्रकृति हो गया था। पशु- पक्षियों को अपने जीवन का अंग बनाया। इसलिए भक्ति क्षेत्र में भी सांप, मकड़ी और हाथी जैसे जानवर, कीड़े-मकोड़ों को भक्ति के द्वार पर जाते हुए दर्शाया। श्रीकृष्ण देवराय के दरबार कवि धूर्जटि की कालहस्तीश्वर महात्म्य काव्य इसका निदर्शन है। श्री (कमड़ी), काळ (सर्प) और हस्ती (हाथी) जो घातुक प्राणी हैं, इनसे मानव ने सात्विक भक्ति के स्वरूप को सीखा। नदी-समुद्र स्नानों को पवित्र बताया है। विशेष ऋतुओं के विशेष पर्वों में नदी-समुद्र स्नान को एक पुण्य कार्य कहकर जीवन में उनके महत्व को प्रतिपादित किया गया।

How to cite this paper: Dr. Sadhana Agarwal "Hindi-Poetry and Various Scenarios of Eco-consciousness" Published in International Journal of Trend in Scientific Research and Development (ijtsrd), ISSN: 2456-6470, Volume-5 | Issue-5, August 2021, pp.2462-2468, URL: www.ijtsrd.com/papers/ijtsrd45060.pdf

IJTSRD45060

Copyright © 2021 by author (s) and International Journal of Trend in Scientific Research and Development Journal. This is an Open Access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution License (CC BY 4.0) (http://creativecommons.org/licenses/by/4.0)

परिचय

पहाडों में देवी-देवताओं के मंदिरों को प्रतिष्ठित कर पत्थर-पहाडों को संरक्षित करने का उपाय निकाला। बन भोजन की परिकल्पना के द्वारा वनों का परिरक्षण और प्रकृति की गोद में आह्लाजनक वातावरण का आनंद उठाने की संकल्पना उसकी रही है। बन के प्रत्येक प्राणी चाहे वह पेड़-पौधे हों या पशु-पक्षी सब उसकी दृष्टि में वन देवताएँ ही रहीं। इसलिए प्राचीन कवि ने प्रकृति की इस शोभा को अपने मनोनेत्रों से कल्पना कर अपनी कविता में उसकी प्राण प्रतिष्ठा की। यह तेलुगुनाडु के सभ्य मानव का इतिहास है, उसके कोमल मनोभावनाओं का सहज स्वरूप है ।लेकिन समय बदलने लगा। अर्जित संस्कारों को तिलांजलि देकर अपने पूर्व रूप की ओर अग्रसर हुआ है। तेलुगु साहित्य में आधुनिक मानव में आये बदलाव परिणाम स्वरूप उसके स्वार्थ की आग में जल रही प्रकृति, बढते प्रदूशन और उसके विनाशकारी रूप का चित्रण किया गया है।[1,2]

आधुनिक तेलुगु साहित्य में आधुनिक कवि जैसे विश्वनाथ सत्यानारायण, रायप्रोलु सुब्बारावु, देवुलपल्लि कृष्ण शास्त्री, गुर्रं जाषुआ, वेंकटेश्वर पार्वतीश कवि, नायनि सुब्बारावु, वेदुल सत्यनारायण, श्रीरंगं श्रीनिवासरावु, आरुद्र, नारायण आदि कवियों ने प्रकृति के साथ मानव जीवन के गमन और समायोजन को चित्रित किया है। हिन्दी की छायावादी कवि की तरह तेलुगु के भाव कवि प्रकृति के साथ सूक्ष्म अनुभूतियों को जोड़ा। इन्होंने प्रकृति को अपनी कविता का प्रधान अंश बनाया। भाव कविता के बाद अभ्युदय कविता, जो हिन्दी में प्रगतिवादी कविता से प्रसिद्ध है, का आविर्भाव होने के कारण तेलुगु साहित्य में प्रकृति के सूक्ष्म रूप के स्थान पर मानव के अस्तित्व के संघर्ष को अभिव्यक्ति मिलने लगी ।तब से कविता में प्रकृति गौण वस्तु बनी और व्यक्ति की कुण्ठाएँ, उसका संघर्ष, असंतुष्टि प्रधान विषय बन गये हैं। [3,4] कवि में लोक मगंल भावना का अभाव और व्यक्तिवादी चिंतन ने काव्य को प्रकृति से दूर रखे। इसलिए भाव कविता के बाद विकसित अभ्युदयवादी कविता में प्रकृति के शांत स्वरूप के स्थान पर ओजमय रूप का चित्रण होने लगा। अपने आक्रोश और संघर्ष को कवि प्रकृति के माध्यम से व्यक्त करने लगा। पिछले चंद वर्षों तक तेलुगु साहित्य में प्रकृति की यही स्थिति रही ।वैश्वीकरण के दौर में विश्व के देशों की आपसी स्पर्धा, आर्थिक उन्नति के कारण व्यक्ति ने मानवता और मानवीय गुणों को विस्मृत किया। सदियों से जिन ऋषियों और संतों के प्रकृति माँ के परिरक्षण के प्रयास रहे, वे आज के दौर में वे सब निष्प्रभ हो गये हैं ।अब इन विकृत परिस्थितियों में व्यक्ति को उसकी विकृत मानसिकता से मुक्त करना अत्यंत आवश्यक है। उसमें फिर से कोमल भावनाओं को जागृत करने की आवश्यकता है। उसे फिर से मानव बनाकर उसके आसपास की प्रकृति को संरक्षित करने की प्रेरणा देनी है।[5,6]

विचार-विमर्श

जैसे-जैसे मानव नागरिक बनता आया, तो वह प्रकृति से दूर होने लगा। उसकी भाषा और भाव भी अप्राकृतिक होने लगे हैं। नगर बस गये हैं। जहाँ हरे-भरे खेत रहें, वहाँ अब कल-कारखाने

निर्मित हुए हैं। मानव में विकसित क्रूर स्वभाव के कारण कोमल भावनाएँ लुप्त प्राय हो गये हैं ।

मनुष्य में बदले स्वभाव के कारण मनुष्य में कोमल कवि का रूप भी मिट गया है। इसलिए आधुनिक कविता में कवि समष्टि भाव को छोड़कर अकेले का दुख रो रहा है। उसकी व्यथा, उसकी कुण्ठाएँ, उसका अहं ही आज की कविता के प्रधान मुद्दे बन कर रह गये हैं। इसलिए आधुनिक कविता में कहीं भी लहलहाती प्रकृति सौदर्य का वर्णन नहीं दिखता है। लिंग, जाति, धर्म के नाम पर विभाजित कविता ही दिखाई देती न कि सुंदर, सुकोमल प्रकृति।[7,8]

मानव के विकृत स्वभाव के कारण प्रकृति भी कविता में उपेक्षित रह गयी साहित्य के अन्य वादों की तरह अब तेलुगु साहित्य में पर्यावरण संरक्षण भी एक वाद के रूप में पहचाना जा रहा है। कवि व साहित्यकार इस ओर अपना ध्यान केन्द्रित कर रहे हैं। तेलुगु साहित्यकार पर्यावरण के प्रति चेतना लाने के लिए पर्यावरण विकृत होने के कारणों को बताकर उससे होने वाले दुष्परिणामों के प्रति सजग करने का साहित्य लिख रहे हैं। उनके द्वारा पर्यावरण प्रदूषण से होनेवाले परिणामों से अवगत करानेवाली कविताएँ भी लिखी जा रही हैं ।

वंगाल सैदाचारी की कविता मेरा गाँव (ना पल्लि) कविता पेड़-पौधों और फसलों से हरे भरे, भीड़-भाड़, सुख-संतोष से भरे गाँव का सुंदर दृश्य प्रस्तुत कर प्रकृति निलय गाँवों के सौंदर्य के प्रति पाठक को आकृष्ट करती है। प्रकृति सौंदर्य वर्णन से व्यक्ति के मन में प्रकृति के प्रति प्रेम जागृत करने की तकनीकी को चंद कवियों ने अपनायी। बहुत पहले ही जंध्याल पापय्यशस्त्री ने प्रकृति को मानव का सहज गुरु बताते हुए पेड़ों से मानव को होने वाले उपकारों का बयान किया है किः सिर पर जलाने वाले ताप धारण कर ठंडी छाया पथिकों को देनेवाली, कठोर शिलाओं में भी उगकर भी फल फूल देनेवाली, प्राण त्याग के उपरांत भी अपनी काया को काट कर देने वाली, इस लोक में नर जाति को परमार्थ बोध करनेवाले पेड ही उसके गुरु हैं ।[9,10] इसमें वृक्षों की परोपकारी, निस्वार्थ बुद्धि से सीख ग्रहण करने का संदेश है। पापिनेनी शिवशंकर ने अपनी हरे रंग का लोक (आकुपच्चनि लोकं) कविता में क्रूर जंतुओं का निवास घने जंगल के पेड़ तक ने गुरुओं को आश्रय देकर मानव जीवन को पथ प्रदर्शन करनेवाली बनदेवता के रूप में दर्शन दिये ।मानव ने नदी तटों पर अपने जीवन की रूप कल्पना की। नदीं हमारा जीवनाधार है। लेकिन ऐसी नदी आज मनुष्य के स्वार्थ के कारण कलुषित होकर जल पर निर्भर समस्त प्राणियों के लिए घातुक बनी है। डॉ महम्मद शरीफ जल प्रदूषण से हो रहे दुष्परिणामों का बयान करते हुए मनुष्य से जल प्रदूषित होने से बचाने की विनति करते हैं ।

प्रकृति की रक्षा करो (प्रकृतिनि रक्षिंचु) कविता में लिखते हैं किः प्रदूषित जल को नालों में छोड़ने से, विकृत रोग फैल रहे हैं, धर्ती का सार क्षीण होकर घट रही है आयु, कृषि क्षीण हुई, पशु संपदा घट गई, जल प्रदूषण फैली, बोल प्रदूषण फैली, अब तो रोक दो, हे नर, रक्षा करो इस अवनी को।[11,12]

पर्यावरण पर कुठाराघात तभी आरंभ हुआ जब मनुष्य स्वयं अपने जन्म दिये माता-पिता को तिरस्कार करने लगा। जन्म दिये माता-पिता को ही उनके बुढ़ापे में घर से निष्कासित करने वाली संतान प्रकृति माँ को कहाँ तक समझेगा और उसका संरक्षण कहाँ तक करेगा। उसकी यह मानसिकता ही उसके पतन की प्रथम सीढ़ी बनी है। मनुष्य का अहंकार स्वार्थ और भोग मानसिकता पर्यावरण के लिए काफी घातक सिद्ध हुई है ।

अपनी सीमाओं को भूलकर व्यवहार करनेवाले मनुष्य को कवि सिरिसिल्ल गफुर शिक्षक अपनी कविता प्राणुलु-पर्यावरण कविता में ऐसी सीख देते हैं किः

आस्मान पर थूकता है, तो वह तुझपर ही गिरेगा, प्रकृति का कोप शाप बनकर जलायेगा तुझे, अहंकार ही है, मनुष्य का प्रलय बनकर डुबोयेगा, स्वार्थ ही बानाता है प्राणियों की ज़िंदगियों को प्रश्नार्थक।

आचंटि श्रीनिवासराव मनुष्य के कुकृत्यों से प्रकृति माता को पहुँच रही हानि, मनुष्य की बदली मानसिकता पर इस प्रकार चिंता जाहिर करते हैं किः जननियों की जननी है, वह आदि जननी है, मानव जन्म का यही स्थाल है, चारों ओर पेड़-जंतुजाल है, जननी ने किये कई उपकार, फिरभी बदला है काल ने, उसके मन पर बिछाया जाल, अपनायी वनों को काटने की बुद्धि ने, लायी है संसाधनों को चुराने का स्वभाव।

कवि रापोलु अरुणस्वामी बढ़ते नगर और घटते गाँवों को प्रदूषण का कारण बताते हुए कहते हैं किः बढ़ रहा है नगरवास, घट रहा है गाँव धन, खेतों को हो रहा है अन्याय, बन रहे हैं निवास स्थान।

बल्ला विजयकुमार मनुष्य की मूर्खता पर अफसोस जताते हुए लिखते है किः जिस डाल पर बैठे, उसी पर न कर कुठाराघात, हरी-भरी जमीन को खराब न कर, गरल को हवा में मत फैल, सुधारना है अपनी गलतियों को बदलना, बदलना है आदतों को, बोना है पेड़ चारों ओर... हटाना है कष्ट। इसी प्रकार डॉ भास्करराव आसोदु हरे भरे पेड़ो के साथ जो दुर्व्यवहार हो रहा है, इस कारण दुखित पेड़ की मर्म वेदना को प्रस्तुत करते हैं। इस कविता में कवि लिखते हैं कि आर्थिक उन्नति के नाम पर मनुष्य के द्वारा किये जा रहे कुकर्मों के परिणाम स्वरूप धर्ती माता सूख रही है। उद्योंगों का निर्माण, उनसे प्रदूषित हो रही हवा, पानी और प्रत्येक प्रकृति पदार्थ पर गौर करते हुए अपने क्रूर स्वभाव को बदलने का संदेश देते हैं ।[13,14]

मनुष्य के साथ सहजीवन जीने वाली प्रकृति के हर जड़-चेतन पदार्थ के साथ संतुलित व्यवहार करने का और समन्वय स्थापित करने का उपदेश कवि अन्वेषी सहजीवों की संतुलन नामक कविता में देते हैं किः अनगिनत जीव राशियों के अधिपति भी एक ही है, तू एक से नहीं भरेगी यह धरती, ... तेरा अस्थित्व धुंधुला होने से पहते... तेरे स्वार्थ युक्त दाँत तोड़कर, सकल जीव संरक्षण के लिए कदम आगे बढ़ा दे ।

यही बात गणपति राजु वोंकट शेषगिरि रावु भी समझाते हैं किः जिस डाली पर बैठा, उसी पर कुल्हाड़ी मारनेवाला मनुष्य, हास-विलास को छोड़, देख आँख खोलकर तेरी स्थिति को, जमीन छोड़कर युद्ध न कर देह भूलकर, पाताल में गिरता तो फिर उबर न पाएगा। कवयित्री सुहासिना आदुर्ति अपनी कविता प्रकृतिलोनि उदयाले (प्रकृति के उदय) कविता में एक कदम आगे बढ़कर कहती हैं कि हम भारतीय, जीव विविधता के वारिस हैं, स्वच्छ नीलगगन, स्वच्छंद हवा, घोषित करेंगे कि हमारे ही हैं।

कलाश्री सौरं प्रवीण कुमार जीव ववैविद्य के परिरक्षण केलिए कमर कसने का उद्बोध करते हुए अपनी मानव जातिकि मरण

शासनं (मानव जाति का मरण शासन) कविता में कहते हैं कि मानव जाति के लिए मरण शासन मत लिखो, जीव वैविध्य के परिरक्षण के लिए कमर कसो।

पर्यावरण के प्रति मनुष्य की दुश्चेष्टाओं पर अवाक् होकर कवयित्री चयनं महालक्ष्मी लिखती हैं कि ओ सभ्य मानव, नवसभ्य मानव, आकाश को सीढ़ियाँ डालनेवाले ओ आधुनिक मानव, चाहे बिना ही पृथ्वी पर अवतरित ओ मानव, चाहने पर भी न रुकने वाली मृत्यु को अपने साथ ले आये हो।

जीव वैविध्य को मानव धर्म साबित करते हुए बि. मल्लय्या ने सृष्टि मनकोसं-प्रकृति मन कोसं कविता में जीव वैविद्य केवल मानव के हित के लिए निर्मित होने की और उसके परिरक्षण की जिम्मेदारी हमारी होने की बत पर बल देते हैं किः क्या काल का मतलब प्रकृति नहीं है, क्या प्रकृति का मतलब प्राण नहीं है, क्या प्राण का मतलब परोपकार नहीं है, क्या परोपकार का मतलब त्याग नही है, क्या त्याग का मतलब जीव वैविद्य नहीं है, क्या जैव वैविद्य का परिरक्षण मानव का धर्म नहीं है ।

आधुनिक समय में पर्यावरण विषय को केन्द्र में रखकर अनेक रचनाएँ लिखी जा रही है। इस ओर तेलुगु कवियों की सेवा सराहनीय है।[15,16]

मानव के स्थूल भौतिक शरीर का विनिर्माण जिन पाँच तत्वों से हुआ है, वे प्रकृति के ही मूलभूत अंग हैं। अतः मानव मन में प्रकृति के प्रेम अनैसर्गिक नहीं है। वस्तुतः प्रकृति से विनिर्मित होकर, उसके तत्वों से पोषित होकर और अंत में उसी से विलीन होना मानव जीवन की नियति है। साहित्य के नाम से प्राचीनतम सर्जनाएँ प्रकृति से ही आरंभ होती है। ऋग्वेद के अनेक सूक्त, रामायण एवं महाभारत के आख्यान, सम्पूर्ण संस्कृत वाङ्मय और उसके पश्चात् समकालीन साहित्य परम्परा विद्यमान है। भारतीय वाङ्मय के आदि-ग्रंथ वेद हैं। इनमें वर्णित प्राकृतिक चित्र आर्य-संस्कृति के प्राकृतिक प्रेम को उजागर करते हैं, यथा-

ओउम् द्योः शान्तिरन्तरिक्ष शान्तिः पृथिवी
शान्तिः रापः शान्तिरोषधयः शान्तिः।
वनस्पतयः शान्ति र्विष्वेदेवाः
शान्ति ब्रह्म शान्तिः सर्व शान्तिः।
शान्ति रेव शान्तिः सा मा शान्ति रेधि।
ऊँ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।

धर्म दर्शन, कला एवं साहित्य सभी में प्रकृति को विशिष्ट स्थान मिला है, किंतु काव्य में उसे सर्वाधिक महत्व प्राप्त हुआ है। कवि अधिक संवेदनशीलता के कारण प्रकृति के समस्त दृश्यों से अभिभूत होकर वर्णन करता है। आदिकवि वाल्मीकि ने जब प्रकृति के दो निर्द्वन्द्व प्राणियों को मुक्त विहार करते देखा तो उनकी आत्मा भाव-विह्वल हो उठी, जब दूसरे ही क्षण एक को व्याध के बाण से आहत देखा तो करुणा का क्रन्दन फूट पड़ा। परिणामस्वरूप कविता का जन्म हुआ-

''मा निषाद! प्रतिष्ठां त्वामगमः शाश्वती समः।
यत्क्रौंचयों मिथुनादेकमवधी काम मोहितम्।।''

प्रकृति के प्रति यह कवि-प्रेम अनादि काल से अनवरत जारी है। यह वर्णन कभी स्वतंत्र आलंबन रूप में, कभी हृदयगत भावों को उद्दीप्त करने अथवा आगे की घटनाओं की पृष्ठभूमि के रूप में होता है। कई बार यह वर्णन बिम्ब-प्रतिबिम्ब, उपदेश, रहस्य या मानवीकरण रूप में दृष्टिगोचर होता है। विशिष्टता यह है कि प्रकृति के स्निग्ध रूप पर कवि मोहित है तो भाव-विह्वल होकर रचना करता है और यदि उस पर संकट है तो वह आभास ही नहीं देता,[17] वरन् उसकी संरक्षा के लिए अपने रचनाकर्म को समर्पित कर देता है। आदिकालीन हिन्दी-काव्य में रासो-काव्यों में प्रकृति का आलम्बन व उद्दीपन रूप में अतिशय वर्णन हुआ है। इसी काल में मैथिल-कोकिल विद्यापति रचित 'पदावली' प्रकृति वर्णन की दृष्टि से अद्वितीय है। ऋतुराज वसन्त का स्वागत किसी राजा के आगमन पर उल्लसित वातावरण के समान प्रदर्शित किया गया है, यह प्रकृति के प्रति ममत्व का निदर्षन है-

आएल रितुपति राज बसंत, धाओल अलिकुल माधवि-पंथ।
दिनकर किरन भेल पौगंड, केसर कुसुम धएल हेमदंड।
नृप-आसन नव पीठल पात, काँचन कुसुम छत्र धरू माथ।
मौलि रसाल-मुकुल भेल ताब, समुखहि कोकिल पंचम गाय।।

भक्तिकालीन कवियों की साधना में आध्यात्मिक तन्मयता व एकनिष्ठता का भाव विद्यमान रहा है। कबीर, तुलसी, सूर, जायसी की रचनाओं में प्रकृति का कई स्थलों पर रहस्यात्मक वर्णन हुआ है। कहीं-कहीं वन, पर्वत, नदी, पशु-पक्षी, उपवन का स्वाभाविक व उल्लासमयी भंगिमाओं के साथ वर्णन भी है। तुलसीदास ने 'रामचरितमानस' में लक्ष्मण और सीता को वृक्षारोपण करते हुए दिखाया है,[11] यथा-

''तुलसी तरुवर विविध सुहाए।
कहुँ-कहुँ सिय, कहुँ लखन लगाए।''

इसी प्रकार सूर, मीरा, रसखान आदि भक्त कवियों ने प्रकृति के अपार व मोहक चित्र खीचें हैं। रीतिकालीन कवियों ने यद्यपि प्रकृति की छटा को आलंकारिक रूप में अधिक प्रकट किया, किंतु बिहारी, पद्माकर, देव, सेनापति ने उसके सौंदर्य को अपनत्व भी दिया। मलयानिल की शीतलता, सुगंधि का वर्णन करते हुए बिहारी ने बिम्बात्मक वर्णन किया है-

''चुवत स्वेद मकरंद कन, तरु तरु तर बिरमाय।
आवंत दच्छिन देष ते थक्यौ बटोही बाय।''

आधुनिक हिन्दी काव्य का जन्म यूरोप के औद्योगिकीरण के समानान्तर होता है, जहाँ प्रकृति मात्र सौंदर्य का उपादान रहकर क्रूर दृष्टि का शिकार होना आरंभ हो जाती है। श्रीधर पाठक 'कश्मीर-सुषमा' में प्रकृति की मनोमुग्धकारी छटा बिखेरते हैं,[12] तो 'हरिऔध' रचित प्रिय-प्रवास में राधिका की हृदय-व्यथा में प्रकृति के उपादानों में व्यंजित होती है, तो कृष्ण भी अपनी पीड़ा की अभिव्यक्ति में प्राकृतिक प्रतीकों का आश्रय लेते हैं-

''उत्कंठा के विवष नभ को, भूमि को पादपों को।
ताराओं को मनुज मुख को प्रायषः देखता हूँ।
प्यारी! ऐसी न ध्वनि मुझको है कहीं भी सुनाती।
जो चिंता से चलित-चित की शान्ति का हेतु होवें।''

प्रकृति की छटा का सुंदर रूप मैथिलीशरण गुप्त के 'साकेत', 'पंचवटी', 'यशोधरा', 'सिद्धराज' आदि ग्रंथों में सुन्दर रूप में अभिव्यंजित होता है। चन्द्र-ज्योत्स्ना में रात्रिकालीन वेला की प्राकृतिक छटा का मुग्धकारी वर्णन द्रष्टव्य है-

''चारू चंद्र की चंचल किरणें खेल रही हैं जल थल में,
स्वच्छ चाँदनी बिछी हुई है अवनि और अम्बरतल में।''

छायावादी काव्य शैली में प्रकृति का सूक्ष्म और उत्कट रूप दिखाई देता है। प्रकृति की भव्यता 'पंत', 'प्रसाद' और निराला' की कविताओं में यत्र-तत्र पाई जाती है। ये कवि प्रकृति की रमणीयता में इतने मुग्ध हो जाते हैं कि प्रेयसी का प्यार भी उन्हें तुच्छ लगता है। [13]पंत कहते हैं-

''छोड़ द्रुमों की मृदु छाया, तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले, तेरे बाल-जाल में, कैसे उलझा दूँ लोचन,
भूल अभी से इस जग को।''

इसी तरह संध्या की छटा निराला को सुन्दरी के रूप में आभासित होती है-

''दिवसावसान का समय
मेघमय आसमान से उतर रही है।
वह संध्या सुन्दरी परी-सी,
धीरे, धीरे, धीरे।''

'कामायानी' इस काल का उत्कृष्ट काव्य है। जिसके आरंभ में प्रकृति के भयानक रूप का वर्णन है, जिसमें जल-प्रलय के पश्चात् सर्वस्व नष्ट हो जाता है। संभवतः 'प्रसाद' का यह संकेत उद्दाम लालसाओं से ग्रसित उन लोंगो के लिए भी है, जो प्रकृति के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं, परिणाम स्पष्ट है-

''हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर
बैठ शिला की भीतल छाँह।
एक पुरुष भीगे नयनों से,
देख रहा था प्रलय-प्रवाह।''

मनुष्य का प्रकृति के प्रति भोगवादी दृष्टिकोण ने जीवन को खतरे में डाल दिया है। परिणामतः अकाल, बाढ़, आदि प्राकृतिक त्रासदियों से हमें सामना करना पड़ता है। 'बंगाल का अकाल' इस प्राकृतिक विनाश का एक दुखान्तकारी घटनाक्रम है। नागार्जुन ने इस दृश्य का वर्णन किया है-

''कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास।
कई दिनों तक कानी कुतिया, सोई उनके पास।
कई दिनों तक लगी भीत पर, छिपकलियों की गष्त।
कई दिनों तक चूहों की भी, हालत रही शिकस्त।''

भोगवादी दृष्टि के साथ वैज्ञानिक प्रयोगों ने भी प्रकृति को नष्ट करने का कुत्सित प्रयास किया है। युद्धों की विभीषिका में जब परमाणु त्रासदी के बाद मनुष्य नहीं बच पाता है तो प्रकृति का क्या हाल होगा? अज्ञेय ने कहा कि [14] 'मानव का रचा हुआ सूरज मानव को भाप बनकर सोख गया।' उसी पृष्ठभूमि में 'दिनकर' ने लिखा-

''बुद्धि के पवमान में उड़ता हुआ असहाय
जा रहा तू किस दिशा की ओर को निरुपाय?
लक्ष्य क्या ? उद्देश्य क्या ? क्या अर्थ ?
यह नहीं ज्ञात, तो विज्ञान का श्रम व्यर्थ।''

अभी मानवता उससे उबर ही नहीं पाई कि पूरे विश्व में आर्थिक उदारीकरण के नाम पर बाजार का विकास हुआ। भूमण्डलीकरण के दौर में बाजारवाद की त्रासदी का सबसे पहले शिकार बना-पर्यावरण। परिणाम स्वच्छ वायु, स्वच्छ जल, शुद्ध फल, शुद्ध भोजन का भी अभाव उत्पन्न हो गया है। इक्कीसवीं सदी का आरंभ पर्यावरण संकट के साथ उदित होता है। ऐसी परिस्थिति में रचनाकार सजग हो उठता है। 'पानी की प्रार्थना' में केदारनाथ सिंह ने भीषण संकट की ओर आगाह किया है-

''अब देखिये न,/लम्बे समय के बाद/कल
मेरे तट पर एक चील आई/प्रभु,
कितनी कम चीलें दिखती हैं आज कल।
आपको तो पता होगा कहाँ गयीं वे?/
पर जैसे भी हो एक वह आई/जाने
कहाँ से भटक कर/और बैठ गयी मेरे बाजू में/
उसने चौंककर पहले इधर उधर देखा।
फिर अपनी लम्बी चोंच गड़ा दी/मेरे सीने में।

अंत में प्रभु अंतिम/लेकिन सबसे जरूरी बात
वहाँ होंगे मेरे भाई बन्धु/मंगल ग्रह या चाँद पर/
पर यहाँ पृथ्वी पर मैं/यानी आपका मुँह लगा यह पानी
अब दुर्लभ होने के कगार तक/पहुँच चुका हूँ।''

अंत में यह स्पष्ट करना जरूरी है कि भारतीय साहित्य में जहाँ प्रकृति का प्रत्येक उपादान वृक्ष, नदी, फल, फूल, अनाज आदि को पूजनीय स्थलों का अधिकार बनाया, वहीं आज का यह पदार्थवादी इंसान अपने जीवन-रस को ही लूटने चला है।[15] ऐसी स्थिति में साहित्य-जगत् को मौन रहकर तमाषा देखने के बजाय अपनी रचनाधर्मिता से मानवता को बचाने का सार्थक प्रयास करना चाहिए, क्योंकि प्रकृति से अलगाव मनुष्य के स्वार्थी होने की निशानी है-

''खेतों की मेड़ों की ओस नमी मिट्टी,
जितनी देर मेरे इन पाँवों में लगी रही,
उतनी देर जैसे मेरे सब अपने रहे,
उतनी देर सारी दुनिया सगी रही,
किन्तु मैंने ज्योंही मौजे-जूते पहन लिए
जेब के पर्स का ख्याल आने लगा।''

परिणाम

पर्यावरण संरक्षण वर्तमान समय के विमर्शों का एक मुख्य विचारणीय बिंदु है। समाज विज्ञानों, तकनीक - विज्ञान, दर्शन से जुड़े लगभग सभी अकादमिक विमर्श तक इसकी व्याप्ति हो चुकी है। मानव जीवन से जुड़े सभी अनुशासनों मे यह चिंता मुख्य हो गई है कि हमें सबसे पहले पृथ्वी को बचाना है अन्यथा मानव ज्ञान व विज्ञान की समस्त उपलब्धियों का कोई अर्थ नहीं रह जायेगा।

साहित्य और कला भी इस चिंता से मुक्त नहीं है। हिंदी साहित्य में आज विविध विमर्श चल रहे हैं। दलित, स्त्री आदिवासी विमर्शों जैसे महा आख्यानिक विमर्श के अतिरिक्त आज पर्यावरण की चिंता भी साहित्य के केंद्र मे आती जा रही है।

प्रकृति का मनोरम रूप हमेशा से ही कवियों को प्रिय रहा है। कविता से प्रकृति का संबंध मां और पुत्री के संबंध की तरह है। हर युग मे प्रकृति के विराट व मनोराम रूप ने कवियों को उद्दीप्त किया है। संस्कृत के महाकाव्यों मे कालिदास से लेकर बाणभट्ट तक, हिंदी मे कबीर, सूर, तुलसी जायसी से लेकर आधुनिक काल मे प्रसाद, पंत, निराला से लेकर केदारनाथ अग्रवाल,

नागर्जुन तक सभी कालजयी कवियों ने प्रकृति के बहुविध मनोरम, जीवनदायी व नवोन्मेषशाली रूप का अंकन किया है।[16]

लेकिन उत्तर आधुनिक युग मे भूमंडलिकरण व अबाध लूट व मुनाफे पर आधारित उपभोक्तावाद ने जिस तेजी के साथ इस प्रकृति का विनाश किया है वह पूर्ववर्ती कवियों ने सोचा भी नहीं होगा। इसलिए समकालीन हिंदी कविता जो बाजारवादी - उपभोक्तावादी संस्कृति का मुखर विरोध करती है, इसी में वह पर्यावरण संकट पर चिंता जाहिर करते हुए पृथ्वी को बचाने का आहवान करती है।

इस संदर्भ में कवि स्वर्गीय मंगलेश डबराल की कविताएं अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। मंगलेश डबराल का बचपन पहाड़ों में बीता था। वे टिहरी गढ़वाल के काफलपानी गांव के रहने वाले थे। उन्होंने पहाड़ों की हिम आच्छादित सौंदर्य को देखा था इसलिए विकास के नाम पर पहाड़ों की दुर्दशा को अपनी व्यक्तिगत स्मृतियों की क्षति के रूप में देखते हैं। अपनी कविता ' यहां थी वह नदी ' में वे लिखते हैं -

" हमे याद है
यहां थी वह नदी इसी रेत में
जहां हमारे चेहरे हिलते थे
यहां थी वह नाव इंतजार करती हुई
अब वहां कुछ नहीं है
सिर्फ रात को जब लोग नींद में होते हैं
कभी - कभी एक आवाज सुनाई देती है रेत सी "

एक नदी के सूख कर रेत हो जाने की त्रासदी को ये पंक्तियां बहुत ही मार्मिक तरीके से व्यक्त करती हैं। मंगलेश जी पर्यावरण के संकट को प्रकृति व मनुष्यता के संकट के समतुल्य रखकर समझते हैं। पूंजीवादी संस्कृति जो वैश्वीकरण के नाम पर स्थानीयता को नष्ट कर रही है, लोक संस्कृति को ग्लोबल सांस्कृतिक के नाम पर समाप्त कर रही है। ऐसे में प्रकृति को बचाने के लिए कवि हमारी लोक संस्कृति व प्राकृतिक जीवन शैली को अपनाने की बात करता है। अपनी कविता ' घटती हुई ऑक्सीजन ' [17] में वे लिखते हैं -

" अक्सर पढ़ने में आता है
दुनिया में ऑक्सीजन कम हो रही है
कभी ऐन सामने दिखाई दे जाता है कि वह कितनी तेजी से घट रही है
रास्तों पर चलता हूं खाना खाता हूं पढ़ता हूं सोकर उठता हूं
तो एक लंबी जमुहाई आती है
जैसे ही किसी बंद वातानुकूलित जगह में बैठता हूं
उबासी एक झोंका भीतर से बाहर आता है
एक ताकतवर आदमी के पास जाता हूं
तो तत्काल ऑक्सीजन की जरूरत महसूस होती है
बढ़ रहे हैं नाइटोजन सल्फर कार्बन के ऑक्सीजन
और हवा में झूलते अजनबी और चमकदार कण
बढ़ रही है घृणा दमन प्रतिशोध और कुछ चालू किस्म की खुशियां "

ये पंक्तियां उपभोक्तावादी संस्कृति के कारण उत्पन्न हो रहे पर्यावरण संकट की ओर इंगित करती हैं।

इस शोध पत्र में मंगलेश डबराल के अतिरिक्त समकालीन कविता मे सक्रिय उन कवियों की कविताओं की पड़ताल की गई है जिन्होंने भूमंडलीकरण के बाद बढ़ते पर्यावरण संकट को अपनी रचनाओं के केंद्र मे रखा है। यह शोध पत्र पर्यावरण की चिंताओं को केंद्र मे रखकर रची गई कविताओं और कवियों को दृष्टिगत रखते हुए लिखा गया है।

मंगलेश डबराल पर्यावरण प्रदूषण की समस्या को आधुनिक विकास की अवधारणा के अंतर्विरोधों के रूप मे समझने की कोशिश करते हैं। नगरीकरण व आधुनिक जीवन शैली की उपभोक्तावादी प्रवृत्ति ने प्रकृति का सर्वाधिक विनाश किया है। भूमंडलीकरण की प्रक्रिया के साथ बड़ी बड़ी कंपनियों ने जंगलों पहाड़ों और नदियों जैसे प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन करना प्रारंभ किया। जंगलों व पहाड़ों पर कब्जे के लिए वहाँ हजारों सालों से निवास कर रहे आदिवासियों को विस्थापित करने का अभियान चलाया गया। इस प्रयास का आदिवासियों ने प्रतिवाद भी किया। आदिवासियों की जीवन शैली वनों और प्रकृति के साथ सह अस्तित्व पर आधारित है। वे वनों पर निर्भर रहते हैं साथ ही उनका संरक्षण भी करते हैं। पर्यावरण की रक्षा उनके लिए सहज जीवन शैली का अंग है। [15] मंगलेश डबराल जी अपनी कविता ' आदिवासी ' में इस प्रक्रिया को इस प्रकार दर्ज करते हैं -

" सिर्फ नदियां नहीं उनके वाद्ययंत्र हैं
मुरिया बैगा संथाल मुंडा उरांव डोंगरिया कोंध पहाड़िया
महज नाम नहीं वे राग हैं जिन्हें वह प्राचीन समय से गाता आया है
और यह गहरा अरण्य उसका अध्यात्म नहीं उसका घर है
कुछ समय पहले तक वह अपनी तस्वीरों में
एक चैड़ी और उन्मुक्त हंसी हंसता था
उसकी देह नृत्य की भंगिमाओं के सहारे टिकी रहती थी
एक युवक एक युवती एक दूसरे की ओर इस तरह देखते थे
जैसे वे जीवन भर इसी तरह एक दूसरे की ओर देखते रहेंगे
युवती बालों में एक फूल खोंसे हुए
युवक के सर पर बंधी हुई एक बांसुरी जो अपने आप बजती हुई लगती थी
अब क्षितिज पर बार - बार उसकी काली देह उभरती है
वह कभी उदास और कभी डरा हुआ दिखता है
उसके आसपास पेड़ बिना पत्तों के हैं और मिट्टी बिना घास की
यह साफ है कि उससे कुछ छीन लिया गया है
उसे अपने अरण्य से दूर ले जाया जा रहा है अपने लोहे कोयले और अभ्रक से दूर
घास की ढलानों से तपती हुई चट्टानों की ओर
सात सौ साल पुराने हरसूद से एक नये और बियाबान हरसूद की ओर
पानी से भरी हुई टिहरी से नयी टिहरी की ओर जहां पानी खत्म हो चुका है
वह कैमरे की तरफ गुस्से से देखता है
और अपने अमर्ष का एक आदिम गीत गाता है
उसने किसी तरह एक बांसुरी और एक तुरही बचा ली है

एक फूल एक मांदर एक धनुष बचा लिया है
अखबारी रिपोर्टें बताती हैं कि जो लोग उस पर शासन करते हैं
देश के 626 में से 230 जिलों में
उनका उससे मनुष्यों जैसा कोई सरोकार नहीं रह गया है
उन्हें सिर्फ उसके पैरों तले की जमीन में दबी हुई
सोने की एक नयी चिड़िया दिखाई देती है
एक दिन वह अपने वाद्ययंत्रों को पुकारता है अपनी नदियों जगहों और नामों को
अपने लोहे कोयले और अभ्रक को बुला लाता है
अपने मांदर तुरही और बांसुरी को जोरों से बजाने लगता है
तब जो लोग उस पर शासन करते हैं
वे तुरंत अपनी बंदूक निकाल कर ले आते हैं। "

पहाड़ों की स्मृतियां मंगलेश जी की कविता में विभिन्न रूप मे आती हैं। आधुनिक विकास के मॉडल ने हिमालयी क्षेत्र के पहाड़ों व उत्तराखंड जैसे पर्वतीय राज्य के पर्यावरण को बहुत अधिक प्रभावित किया है। जल विद्युत परियोजनाओं के लिए नदियों पर बांधों का निर्माण और पहाड़ के ढलान पर वनों के निर्बाध कटाव ने भूस्खलन को बढ़ावा दिया है साथ ही तापमान के बढ़ने के कारण ग्लेशियरों के पिघलने की परिघटना सामने आती है।[18] इसी कारण जोशीमठ जैसी त्रासदी घटित होती है। पहाड़ों के जीवन सौंदर्य को याद करते हुए वे लिखते हैं -

" इन ढलानों पर वसंत आएगा
हमारी स्मृति में
ठंड से मरी हुई इच्छाओं को
फिर से जीवित करता
धीमे - धीमे धुँधुवाता खाली कोटरों में
घाटी की घास फैलती रहेगी रात को
ढलानों से मुसाफिर की तरह
गुजरता रहेगा अँधकार
चारों ओर पत्थरों में दबा हुआ मुख
फिर से उभरेगा झाँकेगा कभी
किसी दरार से अचानक
पिघल जाएगा जैसे बीते साल की बर्फ
शिखरों से टूटते आएँगे फूल
अंतहीन आलिंगनों के बीच एक आवाज
छटपटाती रहेगी
चिड़िया की तरह लहूलुहान "

निष्कर्ष

मानव जीवन एवं पर्यावरण एक दूसरे के पर्याय हैं। जहां मानव का अस्तित्व पर्यावरण से है वहीं मानव द्वारा निरंतर किए जा रहे पर्यावरण के विनाश से हमें भविष्य की चिंता सताने लगी है। हमारे प्राचीन वेदो ऋग्वेद सामवेद यजुर्वेद एवं अथर्ववेद में पर्यावरण के महत्व को दर्शाया गया है।[16]

हिंदी साहित्य में आदिकाल से लेकर आधुनिक काल[18] तक प्रकृति को हमेशा विशिष्ट स्थान मिला है। पर्यावरण चेतना की समृद्ध परंपरा हमारे साहित्य में रही है ,वह आज भी उतना ही प्रासंगिक है

प्रसिद्ध कवि रूपेश कन्नौजिया की पंक्तियां हैं-

प्रकृति तो हमेशा ही मेरी सुंदर मां जैसी है,
गुलाबी सुबह से माथा चूम कर हंसते हुए उठाती है,
गर्म दोपहर में ऊर्जा भर के दिन खुशहाल बनाती है,
रात की चादर में सितारे जड़कर मीठी नींद सुलाती है,
प्रकृति तो हमेशा ही मेरी सुंदर मां जैसी है,

आदिकालीन कवि विद्यापति की रचित पदावली प्रकृति वर्णन की दृष्टि से अद्वितीय है-

मौली रसाल मुकुल भेल ताब
समुखहिं कोकिल पंचम गाय।

भक्तिकालीन कवियों में कबीर सूर तुलसी जायसी की रचनाओं में प्रकृति का कई स्थलों पर रहस्यात्मक- वर्णन हुआ है। तुलसी ने रामचरितमानस में सीता और लक्ष्मण को वृक्षारोपण करते हुए दिखाया है -

तुलसी तरुवर विविध सुहाए
कहुं कहुं सिया कहुं लखन लगाएं।

रीतिकालीन कवियों में बिहारी पद्माकर देव सेनापति ने प्रकृति में सौंदर्य को देखा परखा है बिहारी का एक दोहा देखने योग्य है-

चुवत स्वेद मकरंद कन
तरु तरु तरु विरमाय
आवत दक्षिण देश ते
थक्यों बटोही बाय।

आधुनिक काल में प्रकृति के सौंदर्य का उपादान क्रूर दृष्टि का शिकार होना प्रारंभ हो जाता है [18] मैथिलीशरण गुप्त के साकेत में चंद्र ज्योत्सना में रात्रि कालीन बेला की प्राकृतिक छटा का मुग्ध कारीवर्णन है-

चारु चंद्र की चंचल किरणें
खेल रही है जल थल में
स्वच्छ चांदनी बिछी हुई है
अवनि और अंबर तल में

छायावादी काव्य में प्रकृति का सूक्ष्म और उत्कट रूप दिखाई देता है। प्रसाद पंत निराला महादेवी वर्मा में पर्यावरण चेतना यत्र तत्र पाई जाती है। पंत को तो प्रकृति का सुकुमार कवि भी कहा गया है पंत की यह पंक्तियां देखने योग्य है-

छोड़ दुरुमों की मृदु छाया
तोड़ प्रकृति से भी माया
बाले तेरे बाल जाल में
कैसे उलझा दूं लोचन

प्रसाद की कामायनी का पहला ही पद पर्यावरण का उत्कृष्ट उदाहरण है-

हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर
एकबैठ शिला की शीतल छांह
एक पुरुष भीगे नयनों से
देख रहा था प्रलय प्रवाह

प्रसाद ने प्रकृति को ही सौंदर्य और सौंदर्य को ही प्रकृति माना है।[17,18]

संदर्भ

[1] यजुर्वेद, शान्ति सूक्त, 36/17

[2] वाल्मीकि रामायण, 1/2/15

[3] पदावली, विद्यापति, पृ.-295

[4] रामचरितमानस, तुलसीदास, 2/236/3

[5] बिहारी प्रकाश, बिहारी, पृ.-31

[6] प्रिय-प्रवास, हरिऔध, उद्धृत आधुनिक काव्य सोपान, पृ.-5

[7] पंचवटी, मैथिलीशरण गुप्त, उद्धृत 'कविताकोश' वेब पेज से ।

[8] सुमित्रानंदन पंत संचयन, कुमार विमल, पृ.-51

[9] 'कवि श्री', निराला,सं. सियारामशरण गुप्त, पृ.-11

[10] कामायनी, जयशंकर प्रसाद, चिंता सर्ग, पृ.-5

[11] अकाल और उसके बाद, नागार्जुन, उद्धृत कविताकोश वेब पेज से ।

[12] कुरुक्षेत्र, दिनकर, षष्ठ सर्ग, पृ.-68

[13] पानी की प्रार्थना, केदारनाथ सिंह, उद्धृत कविताकोष वेब पेज से।

[14] बाँस का पुल, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, पृ.-30

[15] ' यहां थी वह नदी ' मंगलेश डबराल, मंगलेश डबराल सेतु समग्र, सेतु प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण पृष्ठ संख्या 51

[16] घटती हुई ऑक्सीजन, मंगलेश डबराल, मंगलेश डबराल सेतु समग्र, सेतु प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण पृष्ठ संख्या 32,

[17] आदिवासी, मंगलेश डबराल, मंगलेश डबराल सेतु समग्र, सेतु प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण पृष्ठ संख्या 334

[18] वसंत, मंगलेश डबराल, मंगलेश डबराल सेतु समग्र, सेतु प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण पृष्ठ संख्या 48